मध्यकालीन मुस्लिम साहित्यकार और उनका साहित्य

हृदय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरविंद कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश-*हिंदी की परंपरा मूलतः धर्मनिरपेक्ष परंपरा है। विभिन्न जनपदों से मिलकर हिंदी भाषी जाति और संस्कृति बनी है। खड़ी बोली के साथ-साथ जनपदीय बोलियों में भी बहुत दिनों तक 'हिंदी' का साहित्य निर्मित हुआ है। विद्यापति और रहीम जनपदीय संस्कृति में उसी हिंदी की विरासत हैं। एक ही बोली के भीतर अवधी में जायसी और तुलसी, ब्रजभाषा में सूरदास और रसखान इसी धर्मनिरपेक्ष जातीयता के उदाहरण हैं। मुसलमान लेखकों ने भारतीय संस्कृति को स्वयं समझा और अन्य मुसलमानों को समझाया। यह निश्चित रूप से शलाघ्य है। उल्लेखनीय यही है कि इन मुसलमान कवियों ने अपने काव्य के द्वारा इस्लाम तथा हिंदू धर्म के बीच की दूरी को मिटाने का प्रयास किया। कलात्मक चमत्कार से आगे बढ़कर विश्वबंधुत्व का मार्ग दिखाया।*

बीज शब्द-धर्मनिरपेक्ष जातीयता, जनपदीय संस्कृति, हिंदी भाषी जाति और संस्कृति, विश्वबंधुत्व

भूमिका-हम जिस खड़ी बोली हिंदी में अपना सांस्कृतिक व्यवहार करते हैं- *"शिक्षा से लेकर साहित्य तक- उस खड़ी बोली के पहले कवि अमीर खुसरो थे और उसके पहले कहानीकार रैवरेंड जे. न्यूटन"।*[1] हिंदी केवल हिंदुओं की भाषा नहीं है। उसे संवारने में मुसलमानों और ईसाईयों ने भी योगदान दिया है। हिंदी की परंपरा मूलतः धर्मनिरपेक्ष परंपरा है। विभिन्न जनपदों से मिलकर हिंदी भाषी जाति और संस्कृति बनी है। खड़ी बोली के साथ-साथ जनपदीय बोलियों में भी बहुत दिनों तक 'हिंदी' का साहित्य निर्मित हुआ है। विद्यापति और रहीम जनपदीय संस्कृति में उसी हिंदी की विरासत हैं। एक ही बोली के भीतर अवधी में जायसी और तुलसी, ब्रजभाषा में सूरदास और रसखान इसी धर्मनिरपेक्ष जातीयता के उदाहरण हैं। यह परंपरा अपभ्रंश से चली आई है। सरहपा, पुष्पदंत, अब्दुर्रहमान, ये तीनों गैर-दरबारी परंपरा के कवि हैं। सरहपा को बौद्ध, पुष्पदंत को जैन एवं अब्दुर्रहमान को मुसलमान माना गया है।

हिंदी भाषा के क्षेत्र में मुसलमानों का योगदान-उर्दू-फारसी को मुसलमानों की भाषा मानकर हिंदुओं का उससे विमुख हो जाना भले ही ऐतिहासिक तथ्य है, परंतु यदि ध्यान से देखा जाए तो मुसलमान भी चिरकाल से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से संबंध जोड़ने का भरसक प्रयत्न करते रहे हैं।

मुस्लिम व्यापारी एवं धर्म-प्रचारक अपने साथ फारसी भाषा लाए और फारसी भाषा के माध्यम से उनके मनीषियों ने अपने संप्रदाय के लोगों को भारतीयता से परिचित करवाया। फारसी का सहारा लेकर बहुत से हिंदुओं ने भी भारतीय मत-मतांतरों का परिचय उन्हें दिया। भारत के इतिहास को फारसी भाषा में लिखकर प्रस्तुत किया। 'विशन-पुरान' (विष्णु-पुराण) जैसा ग्रंथ लिखकर भारतीय आध्यात्मिकता के द्वार मुसलमानों के लिए खोल दिए। किंतु उनका (हिंदू लेखकों) का उद्देश्य समझाना था, समझना नहीं।

मुसलमान लेखकों ने भारतीय संस्कृति को स्वयं समझा और अन्य मुसलमानों को समझाया। यह निश्चित रूप से शलाघ्य है। ऐसे मुसलमान लेखकों की सूची लंबी है, जिन्होंने फारसी भाषा में भारतीय संस्कृति और समाज को प्रस्तुत किया। उनमें दारा शिकोह, आजाद बिलग्रामी, इशरत सियालकोटी, मीर अब्दुल वाहिद, मीर मुसहफी, आतिश इत्यादि उल्लेखनीय हैं।दारा शिकोह को हिंदू दर्शन के मूल ग्रंथों की अच्छी समझ थी, उसने प्रमाणिक दार्शनिक ग्रंथों को फारसी में अनुवाद कर, हिंदू धर्म के महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों को सरल रूप देकर मुसलमानों के सामने प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं ऐसा माना जाता है कि उन्होंने बावन उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मजामुल बहरैन' है। इस पुस्तक में विद्वतापूर्ण ढंग से हिंदू तथा इसलाम धर्म का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें सृष्टिवाद के उन मूल सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है, जो ब्राह्मण धर्म और इस्लाम दोनों में समान हैं।

फारसी के बाद उर्दू का दौर शुरू होता है। अनेक मुसलमान लेखकों ने भारत व उसकी संस्कृति का गौरवपूर्ण उल्लेख उर्दू साहित्य में किया है। 'मीर' ने जो भारत की भूमि का वर्णन किया, वह अद्भुत है। मुसहफी और आतिश अन्य रचनाकार इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

हमें इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि फारसी व उर्दू साहित्य में भारतीय सभ्यता व संस्कृति को समझने का सराहनीय प्रयास मुसलमान लेखकों ने किया है। उर्दू में किये गए भर्तृहरि के श्लोकों, पुराणों, श्री मद्भागवत, रामायण, महाभारत, कुमार संभव, तथा शाकुंतलादि के अनुवादों एवं मम्मट, लोल्लट, आनंदवर्धन आदि की व्याख्याओं से इस तथ्य की पुष्टि होती है।जहाँ तक हिंदी साहित्य का संबंध है, हिंदी भाषा के विकास का सवाल है। अगर इसके इतिहास से, इसके साहित्य से उन लोगों का नाम निकाल दें जिन्हें हम मुसलमान कहते हैं तो हमें पता लगेगा कि हिंदी साहित्य कितना निर्धन है। भाषा का किसी संप्रदाय विशेष से संबंध होना आधुनिक राजनीति की अस्मितामूलक परिघटना है। अब भाषा को जातीयता व राष्ट्रीयता के निर्माण में महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में महत्व दिया जाता है। सच्चाई यह है कि ऐसे अनेक 'हिंदी' लेखकों की चर्चा करते समय हमारे मन में कभी इस बात का विचार भी नहीं आता, जबतक कि हम उनकी जीवनी लिखने न बैठें कि वे हिंदू थे या मुसलमान। उदाहरणतः क्या हिंदी अमीर खुसरो, कबीर, रहीम, रसखान, और रसलीन जैसे कवियों और विचारकों को भूल सकती है। उर्दू तथा फारसी में ही नहीं हिंदी में भी अनेक मुस्लिम लेखकों ने भारतीयता को ग्रहण करने का प्रयास किया है। रसखान जैसे कई मुसलमान कवियों ने तो कृष्ण को ही अपना अराध्य स्वीकार किया है और उनकी भक्ति में ऐसा लीन हुए कि उनके मुसलमान होने पर भी संदेह होने लगता है।इसका कारण यही है कि जब मुसलमान भारत में बस गए और मां के दूध के साथ भारतीय परंपराओं का भी पान करने लगे, तब उनके लिए अभिव्यक्ति का माध्यम फारसी न होकर, भारतीय भाषाएं बनी। यद्यपि अभिव्यक्ति के लिए विचारधारा उनके पास इस्लामी ही थी, किंतु उन्होंने इसे ईरान-अरब से नहीं लिया था, अपितु भारत के जीवन दर्शन से जुटाया था। बल्कि भारतीय फारसी का एक अलग ही रूप विकसित हो गया जो ईरानी फारसी से बिलकुल भिन्न था।

उदारवादी मुसलमानों को इस्लाम और अपने देश की प्रशंसा करने में कोई विरोधाभास नज़र नहीं आता था। उनके अनुसार 'कुरान-मजीद' जिसे सभी मुसलमान ईश-ग्रंथ मानते हैं, उसमें अनेक स्थलों पर इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि ईश्वर ने अपना नबी संसार के प्रत्येक क्षेत्र में भेजा जो वहां के लोगों को वहीं की भाषा में सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर सके। मुसलमानों की यही आस्था

उन्हें प्रत्येक देश और जाति के धर्म पुरूषों का सम्मान करने की शिक्षा देती है। सिद्धांततः इसलाम मूर्तिपूजा (बुतपरस्ति) से नफरत करता है परंतु हिंदओं के साथ रहते-रहते वह भी नरमा गया है। दृष्टव्य है- *"सन 1911 ई. की संयुक्त प्रांत की सेंसस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि बहुत से मुसलमान (चुरिहार) कालका माई के पूजक हैं और हिंदुओं की तरह श्राद्ध करते हैं। ...पूर्व पंजाब की मुस्लिम महिलाएँ बच्चों को चेचक निकलने पर 'शीतला मंदिर' में शीतला माता से प्राणरक्षा की प्रार्थना करती है...। कच्छ (गुजरात) के मोमिन अपने को शिया लिखते हैं, लेकिन वे मुसलमानों में नहीं मिलते, वे मांसाहार नहीं करते, मस्जिद के नियम नहीं मानते, और न रमजान का व्रत रखते हैं। राम-राम कहकर उनमें अभिवादन की प्रथा है। वे त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) के उपासक हैं तथा अपने पीर इमामशाह को ब्रह्मा का अवतार मानते हैं।"*[2]

हिंदी साहित्य के इतिहास में मुस्लिम साहित्यकारों की परंपरा-हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रत्येक काल में कोई न कोई महत्त्वपूर्ण मुस्लिम रचनाकार दिख ही जाता है, जिसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। सबसे पहले आदिकालीन कृति 'संदेश-रासक' का ही ध्यान आता है, जिसके रचनाकार अद्दहमाण हैं। भक्तिकाल के संत कबीर पालन-पोषण के आधार पर मुसलमान थे। पूरा का पूरा सूफी साहित्य मुसलमानों के द्वारा लिखा गया है। कृष्ण-भक्ति शाखा व राम-भक्ति शाखा में अनेक उल्लेखनीय मुसलमान भक्त कवि हुए हैं। 'कृष्ण' को आधार बनाकर रीतिकालीन अनेक मुसलमान कवियों ने काव्य-सृजन किया है। रसलीन, रसखान आदि उनमें महत्वपूर्ण हैं।

आदिकाल के काल के कवि अमीर खुसरो को खड़ी बोली हिंदी का जनक माना जाता है। उनको इस बात का गौरव प्राप्त है कि उन्होंने भारतीय संगीत को भी नई दिशा दी है। ये हजरत निजामुद्दीन के पक्के शिष्य और फारसी के महाकवि थे। इनकी साहित्य-साधना का मूलमंत्र समन्वय है। भाषा के क्षेत्र में, सांस्कृतिक क्षेत्र में, कविता के क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, और जनजीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में मानवतावादी दृष्टिकोण को रखकर सबका समन्वय करना ही उनका महान लक्ष्य था।

हिंदू-मुस्लिम रिश्तों की कड़वाहट दूर करने के लिए संत कवियों की तुलना में सूफी कवियों ने अधिक योगदान किया है। इस संदर्भ में आ. शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में लिखा है, *"कबीर ने अपनी झाड़ फटकार के हिंदुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को दूर करने का जो प्रयास किया है वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ है, हृदय को स्पर्श करने वाला नहीं। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा न व्यक्त हुआ। ...कुतुबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानियों के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवनदशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।"*[3]

मलिक मोहम्मद जायसी ने हिंदी में सूफी काव्य लिखने वालों में कुतुबन को पहला स्थान दिया। क्योंकि उनकी दृष्टि में शायद 'चंदायन' (मुल्ला दाउद) धार्मिक ग्रंथ नहीं था, केवल लौकिक ग्रंथ था जिसमें चंदा और लौरिक की प्रेमकथा थी। गाजीपुर के उसमान ने 'चित्रावली' लिखी थी। ये सभी कवि मुसलमान थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में खुदा और रसूल को याद किया तथा इसके साथ ही अपने देश की प्रशंसा में भी कोताही नहीं बरती। जैसा उसमान द्वारा गाजीपुर के लिए लिखे गए पद में दिखता है। उसमान के बाद नियामत खाँ जान, शेख नबी, कासिम शाह और नूर मोहम्मद जैसे अनेक सूफी कवि हुए।

1. *"'इंद्रावत' की रचना करने पर शायद नूर मोहम्मद को समय-समय पर उपालंभ सुनने को मिलता था कि तुम मुसलमान होकर हिंदी भाषा में रचना करते गए। इसी कारण 'अनुराग बांसुरी' के आरंभ में सफाई देने की जरूरत पड़ी।*

जानत है वह सिरजनहारा। जो कछु है मन मरम हमारा।।
हिंदू मग पर पांव न राखेऊ। का जौं बहुतै हिंदी भाखेऊ।।

इसका तात्पर्य है कि संवत 1800 तक आते-आते मुसलमान हिंदी से किनारा खींचने लगे।"[4]

काजियों और मुल्लाओं को लताड़ने में भारतीय सूफी चिंतक भी किसी से पीछे नहीं रहे। आस्थाओं की दृष्टि से शेरशाह और हुमायूँ दोनों ही मुसलमान थे। किंतु तत्कालीन सूफियों सहानुभूति शेरशाह के साथ थी, हुमायूँ के साथ नहीं। अलाउद्दीन की सल्तनत कायम होने पर संस्कृतज्ञ ब्राह्मण और काव्यशास्त्री 'पंडितराज' जगन्नाथ ने उसे 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरों' कहकर परंपरा निभाई थी जबकि जबकि जायसी ने 'पदमावत' में उसी 'दिल्ली सुलतान' को शैतान का दर्जा दिया था।

उल्लेखनीय यही है कि इन मुसलमान कवियों ने अपने काव्य के द्वारा इस्लाम तथा हिंदू धर्म के बीच की दूरी को मिटाने का प्रयास किया। कलात्मक चमत्कार से आगे बढ़कर विश्वबंधुत्व का मार्ग दिखाया। कुछ ऐसे भी रचनाकार हुए जिनका उल्लेख इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलता। उनमें शाह मीरांजी तथा शाह बरकतुल्ला प्रेमी महत्वपूर्ण हैं। नजीर अकबराबादी को संभवतः इसलिए हिंदी साहित्य में स्थान नहीं मिला क्योंकि उनकी रचनाएँ फारसी लिपि में उपलब्ध थीं।

नजीर ने मुसलमान कवियों को भारतीय जीवन की ओर बढ़ने के लिए ललकारा तथा अनेक देवी-देवताओं, अवतारों, भारतीय सामंतों, ऋतुओं, पर्वों के दृश्यों पर कविताएँ लिखकर साहित्य के लिए बहुमुखी प्रगति के द्वार खोले। उन्होंने गंगा नहाकर नमाज भी पढ़ी और रोज़े रखकर आरती भी उतारी।

निष्कर्ष-मुसलमानों का भारतीयता के प्रति स्नेह का इससे बड़ा उदाहरण क्या मिलेगा कि इन्होंने इस्लाम धर्म द्वारा वर्जित संगीत को भी हृदय से अपनाया और भारतीय संगीतज्ञों की भांति न केवल उसमें दक्षता प्राप्त की अपितु भारतीय संगीत को नूतन अविष्कारों से सजा-संवारकर उसकी श्री वृद्धि भी की। तानसेन के नाम पर भारतभर के संगीतज्ञ ईनाम लाते हैं तो बिस्मिल्लाह खाँ स्वातंत्र्योत्तर भारत के 'भारत रत्न' कहलाते हैं।

****

संदर्भ:

1. विभूति नारायण राय (सं.), कथा साहित्य के सौ वर्ष पृ. 33.
2. डॉ. साधना निर्भय, हिंदी के मुसलमान कवियों का कृष्ण-काव्य, पृ. 93.
3. भोलानाथ तिवारी, अमीर खुसरो, पृ. 15.
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 59 व पृ. 66